International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 07-08-2019; Accepted: 10-09-2019
www.socialsciencejournal.in
Volume 5; Issue 6; November 2019; Page No. 36-39

भारत में ग्राम पंचायत का एक अध्ययन

डॉ. प्रवेश कुमार पाण्डेय
'श्री गुरू नानक महिला महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) सहायक प्राध्यापक, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
भारत में लोकतंत्र के इस आदर्श स्वरूप को अपनाया गया है जो लोकतांत्रिक जीवन के मूल्यों को समाज के प्रत्येक क्षेत्र में स्थापित करता है। इसलिए भारत में केन्द्र से लेकर स्थानीय स्तर तक प्रतिनिधि संस्थाओं का संगठन लोकतंत्र के आधार पर स्थानीय स्वशासन विषय सूची के अन्तर्गत किया है। इसलिए स्थानीय संस्थाओं को संगठित करने का दायित्व इकाईयों की सरकार पर अर्थात गांवों तथा शहरों तक संगठित किया गया है। राज्य सरकारों द्वारा बनाये गये कानूनों के आधार पर इनका निर्वाचन होता है। स्थानीय नागरिक निर्वाचन पद्धति द्वारा इनका निर्वाचन करते हैं। इन स्थानीय संस्थाओं का संबंध नागरिकों के दैनिक जीवन से होता है क्योंकि नागरिकों जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिससे इनका संबंध न हो। शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई और उद्योग–धन्धे आदि सभी क्षेत्रों एवं नागरिकों हेतु दैनिक जीवन से संबंधित अनेक विषयों की व्यवस्था करके विभिन्न प्रकार के कार्य करते हुये सुविधायें प्रदान करती है।

मूल शब्दः लोकतंत्र, स्थानीय सरकार, स्वशासन, स्वेच्छाचारिता, पंचवर्षीय योजना, स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता, सामुदायिक कार्यक्रम।

1ण् प्दजतवकनबजपवद

केंद्रीय या राज्य सरकारों को स्थानीय समस्याओं का सही ज्ञान नहीं हो पाता। स्थानीय व्यक्ति ही स्थानीय समस्याओं का सही समाधान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय और राज्य सरकारों के पास अनेक महत्वपूर्ण कार्य होने के कारण उनसे यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे स्थानीय समस्याओं पर भी पूरा ध्यान दे सकें। अतः संस्थाएँ स्थनीय कार्यों एवं समस्याओं के समाधान का भार अपने ऊपर लेकर केन्द्रीय और राज्य सरकारों का भार कम करती हैं।

ये समस्याएँ नागरिकों में राजनैतिक चेतना उत्पन्न करने में सहायक हैं। और लोकतन्त्र की सर्वश्रेष्ठ पाठशाला है। इस प्रकार भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विकास में इन संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः लोकतन्त्र की जड़ों को मजबूत करने, उसे सफल बनाने तथा ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों का विकास करने के लिए ग्राम और शहरों के प्रत्येक स्तर पर लोकतान्त्रिक संस्थाओं के रूप में स्वशासन संस्थाओं का गठन किया गया है।

आदिकाल में ग्राम पंचायत

आदिकाल से मानव अपने कबीलों जनसमूहों और गाँव के बड़े–बूढ़ों श्रेष्ठ व्यक्तियों तथा लोकप्रिय प्रतिनिधियों की सलाह पर चलता रहा है। ये श्रेष्ठ और लोकप्रिय व्यक्ति जो जनता की समस्याओं को सुलझाने तथा विकास संबंधी गतिविधियों को सुनियोजित करने में अग्रणी भूमिका निभाते रहे हैं। विचार विमर्श और परामर्श की इस प्रक्रिया ने भारत में सदियों पूर्व ग्राम पंचायतों का रूप ले लिया था। ये ग्राम पंचायतें जनता द्वारा स्थापित स्वशासी संस्थाएँ थीं। प्राचीन और मध्य काल में इन पर राजाओं, नवाबों, बादशाहों आदि का न कोई नियंत्रण था न कोई हस्तक्षेप था। ग्रामीण जनता निष्पक्ष योग्य और अग्रणी व्यक्ति को पंच चुन लेती थी और उन्हे पंच परमेश्वर का उच्च दर्जा देती थी। भारतीय ग्रामीण समाज पंच परमेश्वर में कुछ हद तक आध्यात्मिक आस्था रखता था और उसके निर्णय एवं नियंत्रण को स्वीकार करता था। कालान्तर में भारत की स्वायत्तता एवं आत्मनिर्भर ग्रामीण व्यवस्था में बड़े भू–स्वामियों एवं धनी व्यक्तियों का दबदबा और हस्तक्षेप बढ़ता गया और पंचायतों का कोई न कोई स्वरूप बना रहा। परम्परागत रूप से सम्मानित व समाज द्वारा सहज ढंग से स्वीकृत ये पंचायतें ही ग्रामीण समाज पर शासन करती रहीं। आम जनता इन पंचायतों के काम–काज व निर्णय से अधिकाधिक संतुष्ट थी।

प्राचीन भारतवर्ष में स्थानीय स्वशासन की स्वतंत्र उत्पत्ति एवं तत्कालीन आर्थिक सामाजिक परिस्थितियों में उसका स्वतः विकास अत्यधिक महत्वपूर्ण है तथा वह शासन का अनिवार्य अंग था। जबकि आधुनिक काल में सरकार मात्र अपने वैधानिक एवं नैतिक दायित्व की पूर्ति हेतु स्वायत्तशासी संस्थाओं का निर्माण करती है। प्राचीन भारतीय स्वशासी संस्थाओं का काल निर्धारण असंभव है। भारतीय इतिहास को प्रारंभ से ही इसकी पूर्ण विकसित संरचना निम्न स्तर तक उद्योपान्त विद्यमान थी। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा के उत्खनन द्वारा सिन्धु सभ्यता की सुसंगठित प्राचीन नगरीय सभ्यता के प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन समूह बद्धता अर्थात नैसर्गिक उत्पत्ति का परिणाम था। इसी कारण प्रशासनिक इकाइयाँ अपने कार्य और हितार्थ स्वाबलम्बी थीं। प्राचीन ग्रीक, यूनान, स्पार्टा इत्यादि के नगर राज्यों के विपरीत क्षेत्र में नगरपालिका तथा ग्रामीण क्षेत्र में पंचायत प्रणाली अपनी वैयक्तिक विशिष्टताओं सहित परिनिष्पन्न थीं।

इस बात के प्रचुर प्रमाण हैं कि प्राचीन भारत में स्थानीय निकायों का विशेष महत्व था। इससे संबंधित और साक्ष्य संस्कृत वांड–मय में सर्वथा विपुल रूप से निखरे हुए हैं। तत्कालीन नागरिक निकायिका, औद्योगिक, वाणिज्यिक, राजनैतिक तथा धार्मिक स्वायत्तशासी संगठनों के अस्तित्व चिन्ह इतने जटिल रूप में एक दूसरे में निमज्जित हैं कि आधुनिक अध्येता के लिये उनका पृथक अध्ययन अत्यधिक दुरूह ही गया है। प्राचीन साहित्य में लोकप्रिय स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं से संबंधित प्रविधि शब्दावली के विषय में आधुनिक विद्वानों में मतैक्य नहीं है।

मनुस्मृति में ग्राम पंचायत

मेघातिथि ने मनु स्मृति में प्रयुक्त "श्रेणी को व्यापारियों, शिल्पियों, साहूकारों चारों वेदों में निष्णात ब्राम्हणों इत्यादि का स्वाशासी संगठन निरूपित किया है। कौटिल्य कर्मकारों (श्रमिकों) के श्रेणी सांज्ञित करते हैं अन्यत्र कौटिल्य ने कम्बोज, सौराष्ट्र और क्षत्रिय वर्ग द्वारा कृषि, व्यापार तथा सैन्य कार्य से सम्बन्धित संगठन के संबंध में इस शब्द को प्रयुक्त किया है। महाभारत में व्यापारियों के

संघ का उल्लेख श्रेणी के नाम से है। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि श्रेणी विभिन्न प्रकार से व्यवसाय से सम्बद्धजनों की अति सशक्त स्वायत्त संस्था थी। श्रेणी संगठन अपना विद्वान स्वयं बनाते थे। राज्य उनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। यद्यपि वे भी राज आदेशों का उल्लंघन नहीं करती थीं। तथा राज्य समय–समय पर उनका निरीक्षण करता था। श्रेणी मुखिया "श्रेणी मुख्य" कहलाता था। उसकी गणना (रत्नि) में होती थी। तथा राज्याभिषेक से पूर्व भावी राजा उसके आवास पर जाकर उसे "रत्नहषि" प्रदान करता था। इसका अत्यन्त वैधानिक महत्व था। रत्नहषि को स्वीकृति तथा अस्वीकृति रत्नि विशेष की उस भावी राजा के प्रति राजपद हेतु स्वीकृति तथा अस्वीकृति थी। अतएव श्रेणी मुख्य राजा को बनाने वाले "राजतरि! अथवा "राजाकृत" राजानः थे। नारद स्मृति में ग्राम पंचायत

नारद स्मृति में विभिन्न जातियों के समूह को पुत्र संज्ञापित किया गया है। जिनकी आजीविका अनिश्चित थी। परन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा भाग्य के मत से समान व्यवसाय में कार्यरत अनेक जातियों के व्यक्तियों का संगठन पुत्र था। श्रेणी से लघुतर संगत होने के कारण ही इसे अलग से पुनः नाम प्रदान किया गया।

स्वाशासन का अस्तित्व सिन्धु घाटी की सभ्यता में भी विद्यमान था। मात्र ग्रामीण ही नहीं अपितु नगरीय स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ भी भारत में अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में कार्यरत थीं। मौर्य साम्राज्य के चवन राजदूत मेगास्थनीज का वर्णन इसका साक्षी है। साम्राज्य की राजधानी होने और देश–विदेश के व्यक्तियों से परिपूर्ण रहने के कारण पाटलिपुत्र की व्यवस्था साधारण नगरों से कुछ भिन्न वही था। जो अन्य साधारण नगर समितियों का था।

वैदिक कालन ग्राम पंचायत

वैदिक कालीन भारत में सभा और समिति नामक लोकप्रिय संस्थाओं के माध्यम से संचालित होता था। अथर्ववेद में इन्हें प्रजापति ब्रम्हा की दो दुहिताएँ (पत्रियों) कहा गया है। सभा और समिति निर्वाचित संस्थाएँ थीं।

अष्टम शताब्दी से दक्षिण भारत के कतिपय राजाओं ने प्रशासनिक वर्गीकरण के दशमलव प्रणाली प्रचलित कर दस अथवा इसके गुणित ग्रामों के जनपद निर्मित किये। तमिलनाडु का स्थानीय स्वाशासन प्राचीन भारत के सर्वकालिक इतिहास में सर्वश्रेष्ठ था। ग्राम की प्राथमिक संस्था सभा थी। सभा का कार्य धर्मस्व नीति (स्थाई निधि) सिंचाई, कृषि भूमि, आपराधिक दण्ड, जनगणना, आवश्यक अभिलेखों के संरक्षण सहित ग्राम के अन्य समस्त क्रिया–कलाप थे। ग्राम सभाओं को न्याय कार्य भी संपन्न करना होता था। इन न्यायालयों को याज्ञवल्क्य ने युग की संज्ञा प्रदान की है। यह ग्राम न्यायालय युग ईसा पूर्व की प्रथम शताब्दी संस्था थी परन्तु उसे सम्पूर्ण ग्रामवासियों की अनौपचारिक सामुहिक उपस्थिति "वशर" के सहयोग से कार्य निष्पादन करना होता था। सभा के ज्येष्ठ जनपद समिति नाडु के अधीन कार्य करती थी तथा ग्राम प्रमुख ही "नाडु" और सभा के मध्य सम्पर्क रखता था।

ग्राम प्रशासन की लघुत्तम इकाई थे। पंचायत सभा के माध्यम से ही ग्राम प्रशासन का संचालन होता था। ग्राम संस्थाएँ और पंचायत सनातन काल से चली आती थी और उनके अधिकार भी परंपरागत थे। मुखिया ग्राम का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति था। शुक्रनीति में वह ग्रामवासियों के माता–पिता के सदृश्य उपन्यस्त हैं। प्रत्येक सभा अपना विधान स्वयं बनाती थी न कि केन्द्रीय सरकार। केन्द्रीय सरकार को विधान में हस्तक्षेप का कोई भी अवसर प्राप्त नहीं होता था। विधान में संशोधन भी सभा द्वारा ही किये जाते थे। कभी–कभी तो दो माह के अन्तराल में ही विधान संशोधन का उदाहरण प्राप्त है।

राजा को कोई नया कर लगाने से पूर्व ग्राम सभाओं से अनुमति प्राप्त करनी होती थी। राजा किसी ग्राम में भूमिदान से पूर्व उसके मुखिया से परामर्श करता था। भूमि कर को 20 प्रतिशत भाग संबंधित ग्राम को व्यय हेतु प्रदान किया जाता था।

ग्राम पंचायतों में राजा की स्वेच्छाचारिता पर भी अत्यन्त सशक्त अवरोध थे, क्योंकि ग्राम प्रबंध का समस्त दायित्व ग्राम सभाओं अथवा पंचायतों पर था। राजा को अनेक कार्यों में हस्तक्षेप करने का अधिकार न था।

प्राचीनकाल में ग्राम पंचायत

भारतवर्ष प्रमुखतः ग्रामों का देश है। प्राचीन काल से ही भारतीय ग्रामीण समुदाय की सामाजिक संरचना के तीन महत्वपूर्ण आधार जाति प्रथा, संयुक्त परिवार और ग्रामीण पंचायतें रही हैं। स्वशासन की इकाई के रूप ग्रामीण पंचायतों का यहाँ विशेष महत्व रहा है। महात्मा गाँधी की मान्यता थी कि भारतीय ग्रामीण जीवन का पुनः निर्माण ग्राम पंचायतों की पुनः स्थापना से ही संभव है। गाँधी के चिन्तन का केन्द्र मनुष्य है, उन्होंने मानव को केन्द्र बिन्दु मानकर उसके समग्र विकास के लिये जीवन दर्शन दिया है। ग्राम पंचायत ग्रामीण क्षेत्रों में शासन प्रबंध, शांति और सुरक्षा के लिये एक मात्र संस्था रही है। डॉ. राधामुकुन्द मुखर्जी ने ग्राम पंचायतों को प्रजातंत्र के देवता की संज्ञा दी है। आपने इनके संबंध में लिखा है "ये समस्त जनता की सामान्य सभा के रूप में अपने सदस्यों के सामान्य अधिकारों, स्वतंत्रताओं के लिये निर्मित होती है। ताकि, सबमें समानता स्वतंत्रता तथा बन्धुत्व का विस्तार दृढ़ रहे ? डॉ. के. पी. जायसवाल ने भी लिखा है– "पुरातन काल के प्रलेखों से ज्ञात होता है कि लोकप्रिय सभाओं एवं संस्थाओं द्वारा राष्ट्रीय जीवन तथा प्रवृत्तियाँ व्यक्त की जाती थीं। भारत में पंचायतों के प्राचीनता के प्रमाण ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में मिलते हैं। भारत में पंचायत व्यवस्था को प्रारंभ करने का श्रेय राजा प्रिक्षु को है। वैदिक काल से ही यहाँ ग्राम को प्रशासन की मौलिक इकाई माना जाता रहा है।

बिट्रिश कालीन ग्राम पंचायत

भारतीय ग्रामीण पंचायतों को देखकर अंग्रेजों की यह धारणा बनी, यहाँ तो प्रत्येक ग्राम एक स्वतंत्र गणराज्य के रूप में है और भारतीय पंचायतों में गणतंत्र के सभी गुण पाये जाते हैं। यद्यपि अंग्रेजों के द्वारा ग्रामीण पंचायतों की महत्ता को माना तो गया, परन्तु उसकी नीतियों के कारण धीरे–धीरे यहाँ सभी प्रकार प्रशासनिक तथा न्याय संबंधी अधिकारों के अंग्रेज अधिकारियों के हाथों में केन्द्रित हो जाने से ग्राम पंचायत की शक्तियों एवं प्रभाव में कमी आई। जब पंचायतें लघु गणराज्य के रूप में थीं, कालान्तर में शासक बदलते रहे। उनमें परस्पर युद्ध हुए, परन्तु पंचायतों की क्रियविधि इस प्रकार चलती रही जैसे शीर्ष स्तर पर कुछ हुआ ही न हो, क्योंकि शासक पंचायतों की स्वयत्तता में हस्तक्षेप का प्रयास ही नहीं करते थे। पंचायतें ही ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा, न्याय, अनुशासन निर्माण और सिंचाई की व्यवस्था करती थी। मुगल शासनकाल तक पंचायतों की क्रियाविधि में शासकों ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया, परन्तु ब्रिटिश शासकों ने पंचायत व्यवस्था को पंगु बना दिया। चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा था – "ऐसा लगता है कि जहाँ हर वस्तु समाप्त हो जाती है वहाँ भी पंचायतों का अस्तित्व बना रहता है।" सर परसिवल ग्रिक्थ ने भारतीय लोकजीवन में पंचायतों के गरिमामयपूर्ण स्थान पर टिप्पणी करते हुए अपनी पुस्तक "ब्रिटिश इम्पैक्ट ऑन इंडिया में लिखा है कि "इन लघु स्वशासी गणराज्यों के कारण ग्रामीण भारत में नागरिक चेतना सुदृढ़ है, और जन–जीवन में शालीनता दिखाई देती है।"

आधुनिक काल में ग्राम पंचायत

बीसवीं सदी में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के अधिक व्यापक बन जाने पर महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटैल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, सुभाष चन्द्र बोस आदि ने ग्रामीण जनता को बार–बार विश्वास दिलाया कि स्वाधीनता प्राप्त हो जाने के बाद राष्ट्र पुनः निर्माण का शुभारंभ करते समय गाँवों के विकास तथा दरिद्र नारायण की आर्थिक, सामाजिक मुक्ति पर विशेष ध्यान दिया जाएगा। इन लोगों ने वायदा किया था कि ग्राम पंचायतों को पुनः सक्रिय करके उन्हें गाँवों के विकास और स्वशासनव के लिये विशेष अधिकार व दायित्व सौंपे जाएँगें।

जनता द्वारा चुनी गई ग्राम पंचायतें अपने गाँव व क्षेत्र में संबंधित विकास योजनाएँ बनाएँ और ग्राम पंचों को गाँव–गाँव के प्रशासन चलाने का अधिकार हो। गांधी जी ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "हिन्द स्वराज" में स्पष्ट लिखा था कि "स्वराज की मेरी कल्पना यह है कि प्रत्येक ग्राम स्वतंत्र और आत्मनिर्भर गणराज्य हो और केवल उन्हीं मामलों में दूसरे गाँव दूसरे इलाके पर निर्भर रहें, जिसमें यह निर्भरता अनिवार्य हो। बाकी जीवन की आवश्यक वस्तुओं के बारे में आत्म निर्भर हों। हर गाँव में हमारा फर्ज है कि ग्राम के अपने इस्तेमाल के लिये अनाज वहीं पैदा हो।"

रायल विकेन्द्रीकरण आयोग ने 1907–08 में यह अनुभव किया कि दीवानी और फौजदारी अदालतों की स्थापना और राजस्व तथा पुलिस प्रशासन में परिवर्तन के कारण गाँवों की स्वायत्तता समाप्त हो गई। इसलिये उन्होंने अपने प्रतिवेदन में यह संस्तुति दी कि गाँव को स्थानीय स्वशासन की बुनियादी इकाई माना जाए और प्रत्येक गाँव में पंचायत हो। नगरीय क्षेत्रों में नगरपालिकाओं का निर्माण किया जाए।

स्वतंत्रोत्तर भारत में ग्राम पंचायत

भारत की स्वाधीनता के बाद ग्रामीण विकास की ओर भी ध्यान दिया गया परन्तु इस महत्वपूर्ण कार्य में पंचायतों के बजाय सामुदायिक विकास खण्डों, विकास अधिकारी, नौकरशाहों, विधायकों, सांसदों और राज्य सरकारों को अधिक अधिकार दिये गये। अनेक राज्यों में ग्राम पंचायतों और न्याय पंचायतें गठित की गई परन्तु ग्रामीण विकास की पहल ग्राम पंचायतों के हाथ में नहीं रह गई ।

इसी वजह से भारतीय संविधान का जो प्रारूप तैयार किया गया उसमें पंचायत राज को केवल संविधान के निर्देशक सिद्धातों के अंतर्गत रखा गया। इस प्रकार पंचायतों के गठन तथा उनके अधिकारों और दायित्वों का काम राज्य सरकारों की इच्छा पर छोड़ दिया गया। राज्य सरकारों ने गाँवों में अधिकार प्राप्त जनतांत्रिक संस्थाओं (पंचायतों) के लिए ठोस कदम नहीं उठाए। महात्मा गांधी का ध्यान इस त्रुटि की ओर गया था। उन्होंने कहा था कि निःसंदेह यह एक भूल है।

पं. जवाहरलाल नेहरू ने ग्रामीण विकास की ओर ध्यान दिया। पंचायती राज प्रणाली को सुदृढ़ और कारगर बनाने की दृष्टि से प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–1955) में 2 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। इस कार्य के अंतर्गत 55 सामुदायिक परियोजनाओं की अंतिम योजना पर अमल शुरू हुआ। दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–1960) में ऐसी सर्वाधिक कानून पंचायतों का गठन किया गया जो सामुदायिक विकास परियोजनाओं और विस्तार कार्यक्रमों को लागू करने के माध्यम के रूप में कार्य कर सकें न कि आत्मनिर्भर स्थानीय स्वशासन की इकाईयों के रूप में। पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था "पंचायतों व ग्रामीण समुदाय को अपने कार्यक्रम स्वयं बनाना चाहिये। अतः हम केवल ऊपर से कार्य नहीं कर सकते क्योंकि हमें लाखों लोगों का सहयोग लेकर उन्हे संगठित करना होगा और बड़ी परियोजनाओं में सभी को सहभागी बनाना होगा।

पंचायतराज की कमजोरियों और सरकार की ओर से की गई उपेक्षाओं की समय–समय पर चर्चा की जाती रही। अशोक मेहता समिति की 1978 में आई रिपोर्ट में राष्ट्रीय स्तर पर पहली बार मांग की गई कि पंचायतराज व्यवस्था को कारगर बनाने के लिये संविधान में संशोधन करके पंचायतों को अपनी लोकतांत्रिक प्रणाली का एक आंशिक अभिन्न भाग बनाया जाए। अशोक मेहता के बाद जी. वी. के. राव समिति और सिंघवी समिति ने भी अपनी रिपोर्ट दी। इन रिपोर्टों में भी पंचायतों को अधिकार देने और इन्हें रूप देने के सुझाव दिये गए।

स्वाधीनता के बाद देश के अनेक राज्यों में ग्राम पंचायतें बनीं। उन्होंने कुछ कामकाज भी किया। पश्चिम बंगाल और कर्नाटक में पंचायतों को आर्थिक अधिकार दायित्व सौंपें गए। इसके फलस्वरूप इन राज्यों की ग्राम पंचायतें जनता की अधिक सेवा कर सकीं और भ्रष्टाचार तथा नौकरशाही पर अंकुश लगा। परन्तु अधिकांश राज्यों में राजनीतिक तथा प्रशासनिक हस्तक्षेपों के कारण पंचायत राज व्यवस्था को अपेक्षित सफलता नहीं मिली। कई राज्यों में मनमाने ढंग से पंचायतों को भंग कर दिया गया और कुछ राज्यों में 40–45 वर्षों तक पंचायतों के चुनाव नहीं कराए गए। चुनाव बाद भी जनतांत्रिक सदिच्छाओं का गला घोंटा गया। हाल के वर्षो में पंचायतों को सक्रिय करने और उन्हें ग्रामीण जन–जीवन में लाभकारी परिवर्तन का माध्यम बनाने की मांग ने जोर पकड़ा सरकार ने इसके लिये संविधान में संशोधन करने तथा नया पंचायती राज विधेयक लाने का संकल्प किया।

स्वर्गीय राजीव गाँधी ने 45 अक्टूबर 4989 को अलीगढ़ में आम सभा को संबोधित करते हुये पंचायती राज और नगरपालिका विधेयकों के बारे में चिन्ता प्रकट करते हुए कहा कि "ये विधेयक आवश्यक है क्योंकि सरकारी योजनाओं के लाभ आम आदमी तक नहीं पहुँचते योजनाओं के सकल मूल्य का केवल 15 प्रतिशत भाग ही वास्तविक लाभकारियों तक पहुँच पाता है और शेष राशि लालफीताशाही के कारण बार्बाद हो जाता है।'

नरसिंह राव सरकार ने 1994 में पंचायत राज से संबंधित 73वाँ संविधान संशोधन संसद में पेश किया। इस विधेयक के द्वारा पुरानी गलतियों को दूर करके पंचायतों को संविधान के भाग 9 में रखा गया। इस विधेयक में पंचायतों को स्वशासन का निकाय कहा गया। परन्तु इसके काम–काज को अनुच्छेद 243 (अ) और (ब) के अनुरूप विकास कार्यों तक सीमित कर दिया गया। इस विधेयक में यह व्यवस्था है कि पंचायतों की पाँच वर्ष में नियमित रूप से पंचायतों के चुनाव कराए जाएँ पंचायतों की एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिये सुरक्षित की जाएँ। और अनुसूचित जाति व जनजाति के लिये भी उनकी आबादी के अनुसार सीटें सुरक्षित की जाएँ। इसमें प्रत्यक्ष चुनाव की भी व्यवस्था की गई है। इस विधेयक में पंचायतों के वित्तीय संसाधनों के लिये वित्त आयोग गठित करने की व्यवस्था है। निःसंदेह यह व्यवस्था स्वागत योग्य है इसमें सत्ता को आम आदमी तक पहुँचाने के लिये पहली बार ठोस प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

संविधान में 73 वें एवं 74 वें संविधान संशोधन 1993 के बाद निश्चित तौर पर स्थानीय स्वशासन की दिशा में अद्‌भुत सुधार आया है। जहाँ 11वीं अनुसूची में पंचायतों में 29 विषय बनाकर उसके कार्यों की रूपरेखा निश्चित की गई है। और 12वीं अनुसूची में 18 विषय सम्मिलित किए गए हैं। वास्तव में सच्चे लोकतंत्र का सपना तभी साकार हो सकता है जबकि स्थानीय सरकारों को मजबूत किया जाए। और पंचायतों तथा नगर पालिकाओं को वित्तीय पोषण मिलता रहे।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, विद्यासागर, पंचायती राज का इतिहास और स्वरूप, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, उ.प्र. इलाहाबाद, 1963.

2. मराठा, आर.के. लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2008.
3. नागपाल, ओम, लोक प्रशासन सिद्धांत एवं व्यवहार, कमल प्रकाशन, इंदौर, 1994.
4. जैन, एस.सी., कम्युनिटी डेवलपमेंट एण्ड पंचायती राज–इलीह पब्लिशर्स, दिल्ली, 1967.
5. डॉ. शर्मा, के.के., भारत में पंचायती राज, विश्वभारती पब्लिकेशन, जयपुर, 2009.
6. अग्रवाल, प्रमोद कुमार, भारत में पंचायती राज, ज्ञानगंगा, दिल्ली, 2003.
7. चतुर्वेदी, टी.एन. एवं जैन, आर.बी., पंचायती राज–इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 1987.
8. देसाई, बसत, पंचायती राज, जनता को शक्ति हिमालय पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 1990.
9. लाजपतराय, लाला दुखी भारत इंडियन प्रेस लिमि, प्रयाग, 1928.
10. डॉ. गोयल, रतनलाल, विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन, मेरठ, नई दिल्ली, 1988.
11. दुबे, रमेश, हरिशचन्द्र शर्मा, भारत में लोक प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 2007.
12. शर्मा, वीरेन्द्र, लोक प्रशासन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1998.
13. सिंहल, एस.सी., भारतीय शासन एवं राजनीति, लक्ष्मीनाराया अग्रवाल, आगरा, 2005.